पूजोपचार—प्रपञ्चसार में कहा है—१. आसन, २. स्वागत, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. आचमनीय, ६. मधुपर्क, ७. आचमन, ८. स्नान, ९. वस्त्र, १०. आभूषण, ११. सुगन्धि, १२. धूप, १३. दीप, १४. नैवेद्य, १५. नमस्कार, १६. पुष्पाञ्जलि—इन सोलह उपचारों से पूजन करना चाहिये। १. अर्घ्य, २. पाद्य, ३. आचमन, ४. मधुपर्क, ५. आचमन, ६. गन्ध, ७. पुष्प, ८. धूप, ९. दीप, १०. नैवेद्य—ये दशोपचार होते हैं। १. गन्ध, २. धूप, ३. दीप, ४. नैवेद्य तथा ५. वन्दना—ये पञ्चोपचार कहलाते हैं। इस प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिदिन देवताओं की पूजा करनी चाहिये।

कर्मप्रदीपेऽपि—

आवाहनासनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। स्नानं वस्त्रोपवीतं च गन्धमाल्यान्यनुक्रमात्॥
धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणा। पुष्पाञ्जलिरिति प्रोक्ता उपचारास्तु षोडश॥
फलेन सुफलावाप्तिः साङ्गता दक्षिणार्पणात्। गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यमिति पञ्चकम्॥
पञ्चोपचारमाख्यातं पूजने तत्त्वविद् बुधैः।

कर्मप्रदीप में लिखा है—आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वस्त्रोपवस्त्र, उपवीत, गन्ध, माल्य, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा तथा पुष्पाञ्जलि—ये सोलह उपचार होते हैं। इनके अतिरिक्त फल अर्पण करने से सुफल की प्राप्ति तथा दक्षिणा अर्पण करने से साङ्गता होती है। धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध तथा पुष्प—इन पाँच को तत्त्ववेत्ता विद्वानों ने पञ्चोपचार कहा है।

राजोपचारनिरूपणम्

राजोपचाराः—

ततः पञ्चामृताभ्यङ्गमङ्गस्योद्वर्त्तनं तथा। मधुपर्कं परिमलद्रव्याणि विविधानि च॥
पादुकान्दोलनादर्शं व्यजनं छत्रचामरे। वाद्यार्तिक्यं नृत्यगीतशय्या राजोपचारकाः॥

राजोपचार—पञ्चामृत स्नान, अभ्यङ्ग, उद्वर्तन, मधुपर्क, विविध परिमल द्रव्यों का अर्पण, पादुका, आन्दोलन, दर्पण, व्यजन, छत्र-चामर, वाद्य, आर्तिक्य, नृत्य-गीत, शय्या—ये राजोपचार होते हैं।

षोडशोपचारे पुरुषसूक्तमन्त्राः

पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारपूजामन्त्राः बृहत्पाराशरसंहितायाम्—

आद्ययाऽवाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम्। द्वितीययासनं दद्यात्पाद्यं चैव तृतीयया॥
अर्घ्यश्चतुर्थ्या दातव्यः पञ्चम्याऽचमनं तथा। षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्रधौतकम्॥
यज्ञोपवीतं चाष्टम्या नवम्या गन्धमेव च। पुष्पं देयं दशम्या तु एकादश्या च धूपकम्॥
द्वादश्या दीपकं दद्यात्त्रयोदश्या निवेदनम्। चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणा॥
षोडश्योद्वासनं कुर्याच्छेषकर्मणि पूर्ववत्। तच्च सर्वं जपेद्भूयः पौरुषं सूक्तमेव च॥

योगियाज्ञवल्क्यः—

दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव वा। अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम्॥

पुरुषसूक्त से षोडशोपचार मन्त्र—बृहत्पाराशर संहिता में कहा है—प्रथम मन्त्र से देव का आवाहन, द्वितीय से आसन, तृतीय से पाद्य, चतुर्थ से अर्घ्य, पञ्चम से आचमन, छठे से स्नान, सातवें से वस्त्र, आठवें से यज्ञोपवीत, नवें से गन्ध, दशवें से पुष्प, ग्यारहवें से धूप, बारहवें से दीप, तेरहवें से निवेदन, चौदहवें से नमस्कार तथा पन्द्रहवें

से प्रदक्षिणा करनी चाहिये। सोलहवीं ऋचा से उद्वासन करके शेष कर्मों को पूर्ववत् करना चाहिये। पुरुषसूक्त को बार-बार जपना चाहिये।

योगी याज्ञवल्क्य ने कहा भी है—जो व्यक्ति पुरुषसूक्त से जल अथवा पुष्पों से देवपूजा करता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण सचराचर जगत् की पूजा हो जाती है।

पञ्चामृतपूजामन्त्राः

पञ्चामृतपूजामन्त्राः शिवपुराणे—

पूजयेत्परया भक्त्या ह्युपचारैरनेकशः। प्रयोगादि विधायैव कामनां विनियुज्य च॥
पञ्चद्रव्यैश्च प्रथमं पूजनीयो महेश्वरः। दुग्धं दधिमधुसर्पिःशर्कराणां क्रमेण च॥
तस्य तस्य च मन्त्रेण तत्तद्द्रव्यं समर्पयेत्॥ इति।

तस्य तस्य मन्त्रेण पयः पृथिव्याम् इत्यादिदुग्धादिमन्त्रेण इत्यर्थः।

शिवपुराण में कहा है—अपनी कामना के अनुसार विनियोग करके अनेक द्रव्यों के द्वारा विविध उपचारों से भगवान् शिव की पूजा करनी चाहिये। सर्वप्रथम पञ्चद्रव्यों से महेश्वर की पूजा करे। दूध-दही-मधु-घृत-शर्करा—इन पाँच द्रव्यों को उनके वैदिक मन्त्रों से समर्पित करना चाहिये। जैसे—'पयः पृथिव्यां' इत्यादि मन्त्रों का दुग्धादि के लिए प्रयोग करना चाहिये।

स्नानादिपात्रे प्रक्षेपणीयपदार्थाः

स्नानादिपात्रेषु प्रक्षेपणीयाः पदार्थाः मन्त्रतन्त्रप्रकाशे—

अक्षता गन्धपुष्पाणि स्नानपात्रे तथा त्रयम्। द्रव्याभावे प्रदातव्याः क्षालितास्तण्डुलाः शुभाः॥

स्नानादि पात्रों में प्रक्षेपणीय पदार्थ—मन्त्रतन्त्रप्रकाश में कहा गया है—अक्षत, गन्ध, पुष्प—इन तीन को स्नानपात्र में डालना चाहिये। इन द्रव्यों का अभाव होने पर धोए हुए चावल डाल देना शुभ होता है।

पाद्यपात्रविचारः

पाद्यपात्रम् शारदातिलके—

दूर्वां च विष्णुक्रान्तां च श्यामाकं पद्ममेव च। पाद्याङ्गानि च चत्वारि कथितानि समासतः॥

अर्घ्यद्रव्याणि तत्रैव—

गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः। सदूर्वैः सर्वदेवानामेतदर्घ्यमुदीरितम्॥

भविष्येऽपि—

आपः क्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलास्तथा। यवाः सिद्धार्थकाश्चैव अर्घ्योऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः॥

पाद्यपात्र विचार—शारदातिलक में कहा है—दूर्वा, विष्णुक्रांता, श्यामाक, कमल—ये चार पाद्य के अङ्ग हैं; इन्हें पाद्य पात्र के जल में डालना चाहिये। उसी में अर्घ्यद्रव्य बताये हैं—गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सर्षप, दूर्वा—इन पदार्थों को अर्घ्यपात्र में डालना चाहिये।

भविष्यपुराण में भी कहा है—जल-दूध-कुशाग्र-दधि-अक्षत-तिल-यव तथा सरसों (श्वेत)—इन पदार्थों का अर्घ्य अष्टाङ्ग अर्घ्य कहलाता है।

आचमनीयद्रव्याणि

कर्पूरमगुरुं पुष्पं दद्याज्जातीफलं मुने। लवङ्गमपि कङ्कोलं शस्तमाचमनीयके॥

आचमनीय द्रव्य—कर्पूर, अगर, पुष्प, जायफल, लवङ्ग, कङ्कोल—ये आचमनीय जल में प्रशस्त होते हैं।

मधुपर्कद्रव्याणि

सुधाणुना ततः कुर्यान्मधुपर्कं मुखाम्बुजे। आज्यं दधिमधून्मिश्रमेतदुक्तं मनीषिभिः॥
तेनैव मनुना कुर्याददिराचमनीयकम्॥

मधुपर्क के द्रव्य—कमलगट्टा से मधुपर्क देना चाहिये, उसी में घृत, दही तथा मधु भी मिलाना चाहिये—ऐसा मनीषियों का कथन है। इसके उपरांत मनु का कथन है कि जल से आचमन कराना चाहिये।

पञ्चाऽमृतम्

गव्यमाज्यं दधि क्षीरं माक्षिकं शर्करान्वितम्। एकत्र मिलितं ज्ञेयं दिव्यं पञ्चामृतं परम्॥

पञ्चामृत—गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, मधु तथा शक्कर—ये एकत्र मिलकर पञ्चामृत कहलाते हैं।

पञ्चगव्यम्

पञ्चगव्यं पवित्रं तु आहरेत्ताम्रभाजने। गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेण गोमयम्॥
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राब्णोति वै दधि। तेजोऽपि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्॥
एभिश्च पञ्चद्रव्यैस्तु पञ्चगव्यं प्रचक्षते।

पञ्चगव्य—पञ्चगव्यों को ताम्रपात्र में ग्रहण करना चाहिये। गायत्री मन्त्र से गोमूत्र का, 'गन्धद्वारां' इस मन्त्र से गोमय (गोबर) का, 'आप्यायस्व' मन्त्र से गोदुग्ध का, 'दधिक्राब्णोऽकारिषं' मन्त्र से गोदधि का, 'तेजोऽसि शुक्रं' मन्त्र से गोघृत का तथा 'देवस्त्वा' मंत्र से कुशोदक का ग्रहण तथा अर्पण करना चाहिये। गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र तथा गोमय—ये पञ्चगव्य कहे जाते हैं।

विष्णुधर्मे—

गोमूत्रं भागतश्चार्द्धं शकृत्क्षीरस्य च त्रयम्। द्वयं दध्नो घृतस्यैकमेकश्च कुशवारिजः॥

विष्णुधर्म में कहा है—गोमूत्र जितना हो, उससे आधा गोमय लेना चाहिये। दही दो भाग, दूध तीन भाग तथा घी एक भाग (अर्थात् गोमूत्र के बराबर) लेना चाहिये। एक भाग ही कुशोदक भी लेना चाहिये।

स्नानम्

गन्धाद्भिः कारयेत्स्नानं वाससी परिधापयेत्। दद्याद्दिव्योपवीतं च हाराद्याभरणैः सह॥

स्नान—गन्धादि द्रव्यों से स्नान कराकर वस्त्र धारण कराना चाहिये। हारादि आभूषणों के साथ दिव्य आभूषण अर्पित करना चाहिये।

उद्वर्तनद्रव्याणि

रजनी सहदेवी च शिरीषं लक्ष्मणापि च। सहभद्रा कुशाग्राणि उद्वर्तनमिहोच्यते॥

उद्वर्तन द्रव्य—हल्दी, सहदेवी, शिरीष, लक्ष्मणा, सहभद्रा, कुश—इन द्रव्यों से उद्वर्तन कराना चाहिये।

सौभाग्यद्रव्याणि

हरिद्रा कुङ्कुमं चैव सिन्दूरादिसमन्वितम्। कज्जलं कण्ठसूत्रादि सौभाग्यद्रव्यमुच्यते॥

सौभाग्य द्रव्य—हल्दी, कुङ्कुम (रोली), सिन्दूर, कज्जल, कण्ठसूत्र आदि सौभाग्य द्रव्य कहलाते हैं।

कौतुकद्रव्याणि

कौतुकद्रव्याणि भविष्ये—

दूर्वा यवाङ्कुराश्चैव बालकं चूतपल्लवाः। हरिद्राद्वयसिद्धार्थं शिखिपत्रोरगत्वचः॥

कङ्कणौषधयश्चैताः कौतुकाख्या दश स्मृताः॥

कौतुक द्रव्य—भविष्य पुराण के अनुसार—दूब, यवाङ्कुर (जवारे), सुगन्धबाला अथवा कपूर, आम्रपल्लव, हल्दी, आंवाहल्दी, सफेद सरसों या लालचन्दन, शिखिपत्र (मोरपङ्ख), साँप की केचुली, कङ्कण—ये दश औषधियाँ कौतकु द्रव्य कहलाते हैं।

गन्धानुलेपनम्

गन्धानुलेपनविचारः कालिकापुराणे—

चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहकर्षित एव वा। रसः सम्मर्दजो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव वा॥
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवानां प्रीतिदायकः॥

गन्धानुलेपन विचार—कालिकापुराण में कहा गया है—चूर्णीकृत रूप में, घिसकर, भस्म के रूप में (धुवाँ द्वारा), सम्मर्द के रूप में या प्राण्यङ्ग के रूप में पाँच प्रकार* से प्राप्त गन्ध देवताओं को प्रिय होता है।

गन्धलक्षणम्

गन्धलक्षणानि—

गन्धचूर्णं गन्धपत्रचूर्णं सुमनसां तथा। प्रशस्तगन्ध उक्तानि पत्रचूर्णानि यानि च॥
तानि गन्धाह्वयानि स्युः स गन्धः प्रथमः स्मृतः॥
घृष्टो मलयजो गन्धः सरलश्च नमेरुणा। अगुरुप्रभृतिश्चापि यस्य पङ्कः प्रदीयते॥
घृष्ट्वा स घृष्टो गन्धोऽयं द्वितीयः परिकीर्तितः॥
देवदार्वगुरुब्रह्मसालसारान्तचन्दनाः। प्रियादीनां च यो दग्ध्वा गृह्यते दाहजो रसः॥
स दाहकर्षितो गन्धस्तृतीयः परिकीर्तितः॥
स गन्ध कारवी बिल्वं गन्धिनी तिलकं तथा। प्रभृतीनां रसो योऽसौ निष्पीड्य परिगृह्यते॥
स सम्मर्दोद्भवो गन्धः सम्मर्दज इतीर्यते॥
मृगनाभिसमुद्भूतस्तत्कोशोद्भव एव च। गन्धः प्राण्यङ्गजः प्रोक्तो मोददः स्वर्गवासिनाम्॥
सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा॥

गन्ध के लक्षण—गन्धचूर्ण, गन्धपत्रचूर्ण (काली अगर का चूर्ण तथा तेजपात का चूर्ण), सुगन्धित पुष्प तथा अन्य सुगन्धित पत्रों वाली वनस्पतियाँ (तुलसी, मरुआ, वनतुलसी, बबुई, बेलपत्र, नारङ्गी तथा काकचूर आदि)—ये सब प्रथम प्रकार के गन्ध होते हैं। ये चूर्णगन्ध हैं। घिसा हुआ मलय चन्दन, सरल, रुद्राक्ष, अगर इत्यादि के घिसने से द्वितीय प्रकार का गन्ध निर्मित होता है। देवदारु, अगुरु, ब्रह्म (पारस पीपल), सालवृक्ष (राल का पेड़), खदिर, चन्दन तथा मौगरा आदि के जो अर्क या इत्र निकालते हैं, वह दाहकर्षित तीसरे प्रकार का गन्ध होता है। कारवी (सौंफ, सोया, जीरा आदि), बेल, तालीसपत्र, गरुबा इत्यादि को निष्पीड़ित (निचोड़कर) कर जो रस प्राप्त होता है, वह सम्मर्दज गन्ध कहलाता है। कस्तूरी-जैसे गन्ध प्राण्यङ्गोद्भव होते हैं; यह पाँचवें प्रकार का गन्ध है।

---

* १. चूर्णीकृत—अगर की गन्ध चूर्ण करने पर प्राप्त होती है। २. घृष्ट—चन्दन आदि को घिसने से गन्ध प्राप्त होती है। ३. दाहकर्षित—गुग्गुलु आदि को जलाने पर उसकी गन्ध प्रकट होती है। ४. सम्मर्दज—दबाव से जो सुगन्ध (इत्र) पुष्पादि के रस से प्राप्त होती है, वह सम्मर्दज कहलाती है। ५. प्राणियों के अङ्ग से भी गन्धद्रव्य मिलते हैं; जैसे कि कस्तूरी मृगनाभि से तथा गोरोचन बैल के पित्ताशय से प्राप्त होता है। सुगन्धित अर्क तथा इत्र दाहकर्षित भी होते हैं; क्योंकि बकयन्त्र द्वारा उष्णता देकर उनका निष्कासन होता है।

यह देवताओं को प्रिय होते हैं। सम्पूर्ण गन्धों में मलय-चन्दन का गन्ध सर्वश्रेष्ठ होता है। अतः सब प्रकार का प्रयत्न करके मलयगन्ध का अर्पण देवताओं को करना चाहिये।

देवभेदेन गन्धव्यवस्था

देवभेदेन गन्धास्तत्रैव—

कृष्णागुरुः सकर्पूरः सहितो मलयोद्भवैः। वैष्णवप्रीतिदो गन्धः कामाख्यायाश्च भैरवे॥
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्द्रभागैः समीकृतैः। त्रिपुराप्रीतिदो गन्धस्तथा चण्डयाश्च शम्भुना॥

देवताओं के अनुसार गन्ध का चयन—काली अगर, कपूर तथा मलयचन्दन—यह वैष्णवदेवों के लिये प्रिय गन्ध होता है। यही गन्ध कामाख्या देवी तथा भैरव को भी प्रिय है। कुङ्कुम, अगुरु, कस्तूरी तथा कपूर मिलाकर बनाया गया गन्ध त्रिपुरादेवी, चण्डी तथा भगवान् शङ्कर को प्रिय होता है।

गन्धाष्टकम्

शारदातिलके तु—

गन्धाष्टकं तत्त्रिविधं शक्तिविष्णुशिवात्मकम्। चन्दनागुरुकर्पूरचौरकुङ्कुमरोचनाः॥
जटामांसीकपियुताः शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः॥
चन्दनागुरुह्रीबेरकुष्ठकुङ्कुमसेव्यकाः। जटामांसी मुरमिति विष्णोर्गन्धाष्टकं विदुः॥
चन्दनागुरुकर्पूरतमालजलकुङ्कुमम्। कुशीतं कुष्ठसंयुक्तं शैवं गन्धाष्टकं विदु॥

गन्धाष्टक—शारदातिलक के अनुसार गन्धाष्टक तीन प्रकार का होता है—शक्तिगन्धाष्टक, विष्णुगन्धाष्टक तथा शैवगन्धाष्टक। चन्दन, अगुरु, कपूर, कचूर, कुङ्कुम, गोरोचन, जटामांसी तथा लालचन्दन—ये आठ गन्धद्रव्य मिलकर शक्तिगन्धाष्टक होते हैं। चन्दन, अगर, ह्रीबेर, कूठ, कुङ्कुम, उशीर, जटामांसी तथा मुरा (कपूरकचरी)—ये आठ मिलकर विष्णुगन्धाष्टक कहलाते हैं। चन्दन, अगर, कपूर, तमाल (तेजपत्र), सुगन्धबाला, कुङ्कुमं (केशर), लालचन्दन तथा कूठ—ये आठ द्रव्य मिलकर शैवगन्धाष्टक कहलाते हैं।

गन्धदानेऽङ्गुलिनियमः

गन्धदाने अङ्गुलीविचारः—

अनामिक्या च देवस्य ऋषीणां च तथैव च। गन्धानुलेपनं कार्यं प्रयत्नेन विशेषतः॥
पितॄणामर्पयेद्गन्धं तर्जन्या च सदैव हि। तथैव मध्यमाङ्गुल्या धार्यो गन्धः स्वयं बुधैः॥

गन्धदान में अङ्गुलि-विचार—देवताओं को अनामिका से तथा ऋषियों को भी अनामिका से गन्ध, तिलक आदि अर्पण करना चाहिये। पितरों को विशेष रूप से तर्जनी से गन्ध या चन्दनादि अर्पित करना चाहिये। साधक को स्वयं को मध्यमा अङ्गुलि से गन्ध लगाना चाहिये।

गन्धदाने मुद्राविचारः

गन्धादिदाने मुद्रा—

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरङ्गुल्यग्रेण पार्वति। दद्याच्च विमलं गन्धं मूलमन्त्रेण साधकः॥
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां च पुष्पं देवे निवेदयेत्। मध्यमानामिकाभ्यां तु मध्यपर्वणि देशिकः॥
अङ्गुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा धूपं निवेदयेत्। उत्तोलनं त्रिधा कृत्वा गायत्र्या मूलयोगतः॥
तत्त्वाख्यमुद्रया देवि नैवेद्यं विनिवेदयेत्। मूलेनाचमनं दद्यात्ताम्बूलं तत्त्वमुद्रया॥

गन्धदान में मुद्राओं का विचार—हे पार्वति! मध्यमा, अनामिका तथा अङ्गूठे के अग्रभागों से देवता के मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए साधक को गन्धदान करना चाहिये। अङ्गूठा तथा तर्जनी से देवता को पुष्प चढ़ाना चाहिये। मध्यमा, अनामिका के मध्य पर्वों पर अङ्गूठे के अग्रभाग को रखकर हे देवेशि! धूप का निवेदन करना चाहिये। तीन बार उत्तोलन करके गायत्री मन्त्र या मूल मन्त्र को उच्चारण करते हुए तत्त्वमुद्रा से हे देवि! देवता को नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। मूल मन्त्र से आचमन देकर फिर ताम्बूलदान करना चाहिये।

गन्धदानफलम्

गन्धदाने फलम्—

गन्धेन लभते कामं गन्धो धर्मप्रदः सदा। अर्थानां साधको गन्धो गन्धे मोक्षः प्रतिष्ठितः॥

भविष्येऽपि—

चन्दनेन विलिप्यार्च्चामग्निष्टोमफलं लभेत्। विलिप्य कृष्णागुरुणा वाजपेयफलं लभेत्॥

गन्धदान का फल—गन्ध से काम की प्राप्ति होती है तथा गन्ध सदैव धर्मलाभ कराता है। गन्धों से सभी अर्थ सिद्ध होते हैं। गन्ध में ही मोक्ष प्रतिष्ठित है। भविष्यपुराण का भी कथन है—यदि अर्चा का विलेपन चन्दन के द्वारा हो तो अग्निष्टोम का फल प्राप्त होता है। कृष्णागुरु के विलेपन से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

पूजने ग्राह्यपुष्पाणि

ग्राह्याणि पुष्पाणि शारदातिलके—

कमले करवीरे द्वे कुमुदे तुलसीद्वयम्। जातीद्वयं केतकी द्वे कह्लारं चम्पकोत्पले॥
कुन्दमन्दारपुन्नागपाटलानागचम्पकम्। आरग्वधं कर्णिकारं पारन्ती नवमालिका॥
सौगन्धिकं सकोरण्टं पलाशाशोकमल्लिकाः। धत्तूरं सर्जकं बिल्वमर्जुनं मुनिपत्रकम्॥
अन्यानपि सुगन्धीनि पत्रपुष्पाणि देशिकैः। उपदिष्टानि पूजायामाददीत विचक्षणः॥
मलिनं भूमिसंस्पृष्टं कृमिकेशादिदूषितम्। अङ्गस्पृष्टं समाघ्रातं त्यजेत्पर्युषितं गुरुः॥

ग्रन्थान्तरे—

पङ्कजं पञ्चरात्रं स्याद्दशरात्रं च बिल्वकम्। एकादशाहं तुलसी नैव पर्युषिता भवेत्॥
जातीशमीकुशाः कङ्कुः मल्लिका करवीरजम्। नागपुन्नागकाशोकरक्तनीलोत्पलानि च॥
चम्पकं बकुलं चैव पद्मबिल्वं पवित्रकम्। एतानि सर्वदेवानां संग्राह्याणि समानि च॥
पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं वापि तथैव च। केशवार्थे शिवार्थे वा यथोत्पन्नं तथार्पयेत्॥
मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत्। अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु निर्माल्यमपनोदयेत्॥

ग्राह्य पुष्प—शारदातिलक में कहा है—दो कमल, दो कनेर (लाल), दो तुलसीमंजरी, दो चमेलीपुष्प, दो केतकीपुष्प, दो श्वेत कमल, दो चम्पकपुष्प, दो उत्पल (नीलकमल), कुन्दपुष्प, मन्दार (आक), पुन्नाग, पाटल, नागचम्पा, अमलतासपुष्प, कर्णिकार (अमलतास का अन्य भेद), पारन्ती, मल्लिका, सौगन्धिक (कमल का भेद), कोरण्ट (पियाबांसा का फूल), पलाश, अशोक, मल्लिका, धत्तूरपुष्प, रालपुष्प, बिल्वपुष्प, अर्जुन, मुनिपुष्प (अगस्तिया) तथा अन्यान्य सुगन्धित पुष्पों के द्वारा बुद्धिमान् साधक को पूजा करनी चाहिये।

अग्राह्य पुष्प—मलिन (कुम्हलाए हुए), भूमि पर पड़े हुए, कृमिखादित, केशादि से दूषित, शरीर द्वारा स्पर्श हुए, सूँघे हुए तथा बासी फूल पूजा में नहीं लेने चाहिये।

बासी पुष्पादि में अपवाद—ग्रन्थान्तर में कहा है—पाँच अहोरात्र तक कमलपुष्प बासी नहीं होता है। दश रात्रि तक बिल्वपत्र, पुष्प तथा फल बासी (पर्युषित) नहीं होता है। तुलसीदल ग्यारह अहोरात्र तक बासी नहीं होते हैं। चमेली, छेङ्कुर, कुश, कङ्कु, मल्लिका, लाल कनेर तथा चम्पा, पुन्नाग, अशोक, लालकमल, नीलकमल, चम्पा, मौलसिरी, श्वेतकमल, बिल्वपत्र—इन सबका उपयोग समान रूप से सभी देवताओं के पूजन में होता है। पत्र, पुष्प अथवा फल केशव या शिव को जैसा उत्पन्न होता हो, वैसा ही समर्पित करना चाहिये। मध्यमा तथा अनामिका के मध्य में उन्हें रखकर पूजा करनी चाहिये तथा अङ्गूठा एवं तर्जनी से निर्माल्य (चढ़े हुए पुष्पादि) को हटाना चाहिये।

बिल्वपत्रार्चने नियमः

बिल्वपत्रे विशेषः पटले—

त्रिजटापत्रकैकेन हेरम्बं हरिमर्चयेत्। कैवल्यं तस्य तेनैव शक्तिपूजा विशेषतः॥
पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम्। यथोत्पन्नं तथा देयं बिल्वपत्रमधोमुखम्॥

देवभेदेन वर्ज्याक्षतादीनि—

नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम्। न दूर्वया यजेद्देवीं बिल्वपत्रैर्न भास्करम्॥
उन्मत्तमर्कपुष्पं च विष्णोर्वर्ज्यं सदा बुधः। फलं च कृमिसंयुक्तं प्रयत्नात्तद्विवर्जयेत्॥

मन्त्रमहोदधौ—

अक्षतानर्कधत्तूरौ विष्णौ नैवार्पयेत्सुधीः। बन्धूकं केतकीं कुन्दं केशरं कुटजं जपाम्॥
शंकरे नार्पयेद्विद्वान्मालतीं यूथिकामपि। शक्तौ दूर्वार्कमन्दारान्मालूरं तगरे रवौ॥
विनायके तु तुलसीं नार्पयेज्जातुचिद्बुधः।

आह्निकतत्त्वे—

वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम्। न वर्ज्यं जाह्नवीतोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम्॥
शिवे विवर्जयेत्कुन्दमुन्मत्तं च हरौ तथा। देवीनामर्कमन्दारौ सूर्यस्य तगरं तथा॥

लघुहारीतः—

स्नानं कृत्वा च ये केचित्पुष्पं गृह्णन्ति वै द्विजाः। देवतास्तन्न गृह्णन्ति भस्मीभवति काष्ठवत्॥ इति।
एतत्तु द्वितीयस्नानाभिप्रायकमिति रत्नाकरः। तथा च मत्स्यसूक्तेपि—
स्नात्वा मध्याह्नसमये न च्छिन्द्यात्कुसुमं नरः। तत्पुष्पस्यार्चने देवि रौरवे परिपच्यते॥

बिल्वपत्र में विचार—पटल में लिखा है—बिल्व के तीन संयुक्त पत्तों को एक मानकर गणेशजी तथा शिवजी को अर्पित करे। उसी से शक्ति की पूजा भी करनी चाहिये। उसी से मुक्ति प्राप्त होती है। पत्र या पुष्प को या फल को अधोमुख करके चढ़ाना श्रेष्ठ है। वह जैसा उत्पन्न हो, वैसा ही चढ़ाना चाहिये; किन्तु बेलपत्र को सदैव अधोमुख (उल्टा करके) चढ़ाना चाहिये।

देवभेद से वर्जित अक्षतादि—यवों से विष्णु की पूजा न करे। तुलसी से गणेशजी की पूजा न करे। देवी की पूजा दूर्वा से नहीं करनी चाहिये। सूर्य की पूजा बिल्वपत्रों से नहीं करनी चाहिये। विष्णु भगवान् की पूजा में धतूरा तथा आक के फूल वर्जित हैं। कृमिभक्षित फल भी कभी किसी देवता पर नहीं चढ़ाना चाहिये।

मन्त्रमहोदधि में लिखा है—श्री विष्णु की पूजा यवों (जौ के दानों), अर्कपुष्पों तथा धतूरे से न करें। बन्धूक (दुपहरिया के फूल) वृक्ष के पुष्प, केतकी (केवड़ा) पुष्प, केशर, कुटज, गुड़हल, मालती तथा जूही के पुष्पों से

विद्वान् कभी भी शङ्करजी की पूजा न करे। दूब, अर्कपुष्प, मन्दार से देवी की पूजा न करे तथा सूर्य की पूजा बेलपत्र एवं तगर से नहीं करनी चाहिये। समझदार व्यक्ति तुलसीपत्र से गणेशजी की पूजा न करे।

आह्निकतत्त्व के अनुसार—पूजा में बासी जल, बासी पत्ते वर्जित हैं; किन्तु गङ्गाजल और तुलसीदल पर्युषित (बासी) होने पर भी वर्जित नहीं हैं। श्रीशिवजी को कुन्दपुष्प तथा श्रीविष्णुजी को धतूरा वर्जित है। देवी के लिये अर्क, मन्दार तथा सूर्य के लिये तगर वर्जित है। लघुहारीत में कहा है—जो द्विज दिन में दूसरी बार स्नान कर (अर्थात् मध्याह्न समय) पुष्पों का चयन पूजार्थ करते हैं, वह काठ के अग्नि में जलने की भाँति नष्ट फल हो जाते हैं (तात्पर्य यह है कि पुष्पचयन प्रातःकालीन स्नान के पश्चात् तुरन्त करना चाहिये)। मात्स्यसूक्त में भी कहा गया है—मध्याह्न समय स्नान करके मनुष्य को पुष्प नहीं तोड़ना चाहिये। उस समय तोड़े गये पुष्पों से अर्चना करने से हे देवि! रौरव नरक की प्राप्ति होती है।

धूपनिरूपणम्

धूपविचारः विष्णुधर्मोत्तरे—

धूपदः सर्वमाप्नोति दीपदः सर्वमश्नुते।

धूपद्रव्याणि शारदातिलके—

अगुरूशीरगुग्गुलुशर्करामधुचन्दनैः। धूपयेदाज्यसम्मिश्रैर्नीचैर्देवस्य देशिकः॥

ग्रन्थान्तरे—

अगुरु तगरु कुष्ठं शैलजं शर्करा स्यादुभयघनपुरस्ताच्चन्दनैलाश्च साक्षात्।
त्वचनखरमुशीरं मांसिकर्पूरतालीसदलजलकचोरं जातियुग् धूपराजः॥

तन्त्रसारे—

गुग्गुलुः सरलं दारु पत्रं मलयसम्भवम्। ह्रीबेरमगुरुं कुष्ठं गुडं सर्जरसं घनम्॥
हरीतकीं नखीं लाक्षां जटामांसीं च शैलजम्। षोडशाङ्गं विदुर्धूपं दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥

अन्यच्च—

चन्दनोभयकुष्ठं च नखसर्जः कचोरकः। एतद्गुडसमानेन धूपं भवति चोत्तमम्॥
शकरा नखगन्धं च जटामांसीलघुः समम्। क्षौद्रेण सह सम्मिश्रं धूपं भवति चोत्तमम्॥

धूपविचार—विष्णुधर्मोत्तर में कहा है—धूप देने वाले व्यक्ति को सब कुछ प्राप्त होता है तथा दीपदान करने वाले को सभी उत्तम भोजन तथा भोग प्राप्त होते हैं। शारदातिलक के अनुसार अगर, उशीर, चन्दन, गुग्गुलु, शर्करा तथा मधु का सम्मिश्रण कर देवता को धूप देना चाहिये। ग्रन्थान्तर में कहा गया है कि अगर, तगर, कूठ, छड़ीला, शक्कर, नागरमोथा, मोथा, चन्दन, इलायची, तज, नखी, उशीर, जटामांसी, कपूर, तालीसपत्र, सुगन्धबाला, कचूर, जावित्री, जायफल—इन सबको मिलाकर 'धूपराज' का निर्माण होता है। यह सभी धूपयोगों में श्रेष्ठ है। तन्त्रसार में लिखा है—गुग्गुलु, बिरोजा, देवदार, तेजपात, मलय चन्दन, ह्रीबेर, अगर, कूठ, गुड, नखी, राल, कपूर, हरड़, लाख, जटामांसी, छड़ीला—ये सोलह द्रव्य मिलाकर षोडशाङ्ग धूप कहलाता है। यह दैवकर्म तथा पैत्र्यकर्म (श्राद्ध) में उपयोगी होता है। अन्यत्र भी कहा है—चन्दन, लालचन्दन, कूठ, नख, राल, कचूर—इनमें समान भाग गुड़ मिलाकर उत्तम धूप हो जाता है। अथवा शक्कर, नखी, काली अगर, जटामांसी—इनको समभाग लेकर मधु के साथ घोंटकर उत्तम धूप बन जाता है।

दशाङ्गधूपः

दशाङ्गधूपो मदनरत्ने—

षड्भागकुष्ठं द्विगुणो गुडश्च लाक्षात्रयं पञ्च नखस्य भागाः।
हरीतकीसर्जरसं समांशे भागैकमेकं विलयं शिलाजम्।
घनस्य चत्वारि पुरस्य चैको धूपो दशाङ्गः कथितो मुनीन्द्रैः॥

वामनपुराणे—

रुहिकाख्यं कणं दारु सिह्लकं सागुरुं सितम्। शङ्खं जातीफलं श्रीशे धूपानि स्युः प्रियाणि वै॥

दशाङ्ग धूप—मदनरत्न में कहा है—छः भाग कूठ, बारह भाग गुड़, तीन भाग लाख, नखी पञ्चभाग, हरड़ तथा राल समान भाग अर्थात् एक-एक भाग लेकर तीन भाग छड़ीला ले, कपूर चार भाग ले। अगर एक भाग ले—यह सब मिलाकर मुनीन्द्रों ने दशाङ्ग धूप नाम दिया है। वामनपुराण में कहा है—रोहिष तृण (रोसा घास), देवदारु, शिलारस, अगर, श्वेतचन्दन, शङ्ख (नखी), जायफल—इन द्रव्यों का धूप श्री विष्णु भगवान् को प्रिय है।

धूपदानेऽङ्गुलिनियमः

धूपनिवेदने अङ्गुलीविचारः तन्त्रसारे—

मध्यमानामिकाङ्गुल्योर्मध्यपर्वणि देशिकः। अङ्गुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा धूपं निवेदयेत्॥
ततः समर्पयेद्धूपं घण्टावाद्यजयस्वनैः। न भूमौ वितरेद्धूपं नासने न घटे तथा।
यथा तथाधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत्॥

धूपनिवेदन में अङ्गुलियों का विचार—तन्त्रसार के अनुसार—मध्यमा, अनामिका इन दोनों उंगलियों के मध्य पर्व पर पूजा करने वाले को धूप रखकर अङ्गूठे के अग्रभाग से हे देवेशि! धूप निवेदन करना चाहिये; फिर धूप के समर्पण के लिए घण्टादि वाद्यों को बजाना चाहिये। भूमि पर, आसन पर या कलश पर धूप नहीं डालनी चाहिये। जैसा यहाँ बताया गया है, उसी विधि से धूपनिवेदन करना चाहिये।

धूपादिस्थापनस्थानम्

धूपादिस्थानं यामले—

निवेदयेत्पुरोभागे गन्धं पुष्पं च भूषणम्। दीपं दक्षिणतो दद्यात्पुरतो वा न वामतः॥
वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे। नैवेद्यं दक्षिणे भागे पुरतो वा न पृष्ठतः॥
धूपदीपौ सुभोज्यं च देवताग्रे निवेदयेत्॥

धूपादि स्थान—यामल ग्रन्थ में कहा है—देवता के सामने गन्ध, पुष्प तथा भूषणों का निवेदन करे। दीपक हमेशा दक्षिण दिशा में रखना चाहिये। दीपक देवता के सामने अथवा बाँयें भाग में नहीं रखना चाहिये। धूप हमेशा वामभाग में अथवा सामने निवेदित करे। देवता के दक्षिण भाग में धूप-निवेदन नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार देवता के लिए नैवेद्य दक्षिण दिशा में रखना चाहिये अथवा सामने रखना चाहिये, पीछे नहीं रखना चाहिये। धूप, दीप और भोजन देवता के आगे निवेदन करना चाहिये।

दीपदाननियमः

दीपविचारः शारदातिलके—

वर्त्या कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा। आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैःसौरभशालिनः॥

कालिकापुराणे—

न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपं स्नेहे घृतादिकम्। घृतेन दीपकं नित्यं तिलतैलेन वा पुनः॥
ज्वालयेन्मुनिशार्दूल सन्निधौ जगदीशितुः। कार्पासवर्तिका ग्राह्या न दीर्घा न च सूक्ष्मिका॥

आह्निकतत्त्वे—

सर्वसहा वसुमती सहते न त्विदं द्वयम्। अकार्यपादघातं च दीपतापं तथैव च॥

कालिकापुराणे—

सुवृत्तवर्तिसस्नेहपात्रेऽभग्ने सुदर्शने। मृन्मये वृक्षकोटौ तु दीपं दद्यात्प्रयत्नतः॥
तैजसं दारवं लौहं मार्त्तिक्यं नारिकेलजम्। तृणध्वजोद्भवं चापि दीपपात्रं प्रशस्यते॥
नैव निर्वापयेद्दीपं देवार्थमुपकल्पितम्। दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत्॥

वाराहपुराणे—

दीपं स्पृष्ट्वा तु यो देवि मम कार्याणि कारयेत्। तस्यापराधाद्वै भूमे पापं प्राप्नोति मानवः॥

यामले—

दीपं घृतयुतं रक्षेत्तैलयुक्तं च वामतः। दक्षिणे च सितां वर्तिं वामतो रक्तवर्तिकाम्॥

दीप-विचार—शारदातिलक में लिखा है—कपूर की बत्ती, घी की बत्ती अथवा तिलतेल की बत्ती दीपक में डालकर दीपक अर्पित करना चाहिये। कालिकापुराण में कहा है—देवताओं के लिए दीपक में घी और तैल का मिश्रण नहीं करना चाहिये। भगवान् के लिए या तो नित्य घी का दीपक जलाना चाहिये अथवा तिलतेल का दीपक जलाना चाहिये। रूई की बत्ती बहुत छोटी और अधिक बड़ी नहीं होनी चाहिये। आह्निकतन्त्र में कहा है—यद्यपि पृथ्वी सब कुछ सहन करती है; किन्तु वह दो बातों को सहन नहीं करती—बिना कारण के उस पर पैरों का आघात तथा दीपक की उष्णता। कालिकापुराण में कहा है—अच्छी बत्ती बाँटकर तेल डालकर बिना टूटे-फूटे पात्र में दीपक बनाकर अथवा मिट्टी के दीपक में वृक्षकोटर में दीपक रखना चाहिये। तैजस धातु, लकड़ी, लोहा, मिट्टी, नारियल अथवा तालवृक्ष से दीपपात्र का निर्माण प्रशस्त होता है। दीपक को सदैव दीपाधार पर रखना चाहिये। देवता के लिए जलाए हुए दीपक को कभी बुझाना नहीं चाहिये। दीप का हरण करने वाला अन्धा होता है तथा उसे बुझाने वाला काना होता है। वाराहपुराण में कहा है—हे देवि! जो दीपक का भूमि पर स्पर्श करके कार्य को आरम्भ करता है, उसके उस अपराध से उसे पाप लगता है अर्थात् दीपक को कभी भूमि पर नहीं रखना चाहिये। दीपक से भूमि उष्ण नहीं होनी चाहिये, इस प्रकार से दीपक को रखे। वामन के अनुसार—घी का दीपक देवता के दाहिनी ओर तथा तिल तेल का दीपक बाँईं ओर रखना चाहिये। कपूर की बत्ती को दाहिनी ओर तथा लाल बत्ती को वाम भाग में रखें।

दीपमहिमा

पुरश्चरणकृत्ये च दीपं शृण्विह भैरव। दीपेन लोकाञ्जयति दीपस्तेजोमयः स्मृतः॥
चतुर्वर्गप्रदो दीपस्तस्माद्दीपैर्यजेच्छ्रिये॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

यावदक्षिनिमेषाणि दीपो देवालये ज्वलेत्। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥

दीपमहिमा—हे भैरव! पुरश्चरण कृत्य में जो दीप को प्रज्वलित करता है, वह लोकों को जीत लेता है। दीपक तेजोमय तथा चतुर्वर्ग को देनेवाला है। विष्णुधर्मोत्तर में कहा है—जितने अक्षिनिमेषों तक देवालय में दीप जलता है, उतने ही सहस्र वर्षों तक दीपदानकर्ता स्वर्गलोक में निवास करता है।

नैवेद्यनिरूपणम्

नैवेद्यविचाराः शारदातिलके—

स्वादूपदंशं विमलं पायसं सहशर्करम्। कदलीफलसंयुक्तं साज्यं मन्त्री निवेदयेत्॥
तत्र-तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरम्॥

नैवेद्य-विचार—शारदातिलक में लिखा है—पूजा करने वाले को चाहिये कि वह स्वादिष्ट, सुगन्धित, निर्मल, पायस में शक्कर मिलाकर कदलीफल के साथ घृतसहित नैवेद्य तैयार कर निवेदित करे और उसके उपरान्त जल का आचमन कराये।

नैवेद्यलक्षणम्

निवेदनीयं यद्द्रव्यं प्रशस्तं प्रयतं तथा। तद्भक्ष्यार्हं पञ्चविधं नैवेद्यमिति कथ्यते॥
भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च पेयं चूष्यं च पञ्चमम्। सर्वत्र चैतन्नैवेद्यमाराध्यास्यै निवेदयेत्॥

नैवेद्य के लक्षण—जो प्रशस्त और शुभ द्रव्य देवता के आहार के लिए निवेदन करने योग्य होता है, उसे नैवेद्य कहते हैं। यह पाँच प्रकार का होता है—१. भक्ष्य, २. भोज्य, ३. लेह्य, ४. पेय तथा ५. चोष्य। इस पञ्चविध नैवेद्य को ही सर्वत्र आराध्य देवताओं को निवेदित करे।

नैवेद्यपात्राणि

तैजसेषु च पात्रेषु सौवर्णे राजते तथा। ताम्रे वा प्रस्तरे वापि पद्मपत्रेऽथ वा पुनः॥
यज्ञदारुमये वापि नैवेद्यं स्थापयेद्बुधः। सर्वाऽभावे च माहेये स्वहस्तघटिते यदि॥

नैवेद्य के लिए उपयुक्त पात्र—धातुनिर्मित पात्रों में स्वर्ण, रजत, ताम्र अथवा पत्थर के पात्रों में कमल के पत्तों पर अथवा यज्ञीय काष्ठों के पात्रों में बुद्धिमान् को नैवेद्य रखकर निवेदित करना चाहिये। यदि इन सब पात्रों का अभाव हो तो मिट्टी के पात्र में अर्पित करे। वह यदि स्वनिर्मित हो तो उत्तम रहता है।

नैवेद्यकालः

अर्वाग्विसर्जनाद्द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते। विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात्॥

नैवेद्य काल—विसर्जन के पहले द्रव्य नैवेद्य कहलाता है; परन्तु देवविसर्जन के उपरान्त वही नैवेद्य तत्काल निर्माल्य हो जाता है।

नैवेद्यस्थापनक्रमः

नैवेद्यस्थापनक्रमो गौतमीये—

नैवेद्यं दक्षिणे भागे पुरतो वा न पृष्ठतः। दक्षिणं तु परित्यज्य वामे चैव निधापयेत्॥
अभोज्यं तद्भवेदन्नं पानीयं च सुरोपमम्॥

आह्निकतत्त्वे—

तृषार्ताः पशवो रुद्धाः कन्यका च रजस्वला। देवता च सनिर्माल्या हन्ति पुण्यं पुरा कृतम्॥

देवलः—

चाण्डालेन शुना वापि दृष्टं हविरयाज्ञिकम्। विडालादिभिरुच्छिष्टं दुष्टमन्नं विवर्जयेत्॥

पद्मपुराणे—

हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम्। नैवेद्यं देवदेवाय यावकं पायसं तथा॥
नैवेद्यवस्त्वलाभे तु फलानि च निवेदयेत्। फलानामप्यलाभे तु तोयान्यपि निवेदयेत्॥

नैवेद्य-स्थापन का क्रम—गौतमीय में लिखा है—नैवेद्य को देव के दक्षिण भाग में स्थापित करना चाहिये अथवा सम्मुख स्थापित करना चाहिये। पीठ की ओर कभी भी नहीं रखना चाहिये तथा वाम भाग में भी न रखें। यदि दक्षिण भाग को छोड़कर नैवेद्य वामभाग में रखा जाता है तो वह अन्न अभक्षणीय तथा पान सुरा के सदृश हो जाता है। आह्निकतत्त्व में कहा है—पालतू पशु यदि प्यासे रहें, यदि रजस्वला कन्या का उचित समय में विवाह न किया जाय, देवताओं का निर्माल्य न हटाया जाय तो पूर्व में किया हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है। देवलस्मृति में कहा है—नैवेद्य के लिये चाण्डालादि द्वारा दृष्ट, कुत्ते द्वारा दृष्ट हवि यज्ञ के लिये उपयोगी नहीं रहता तथा बिल्ली आदि के द्वारा जूठा किया गया एवं दुष्ट अन्न भी नैवेद्य तथा यज्ञादि हेतु वर्जित है। पद्मपुराण में कहा है—हवि शालि चावलों का भात, दिव्य घृत तथा शर्करा से युक्त होना चाहिये। इसी प्रकार देवाधिदेव के लिये नैवेद्य या तो यव-निर्मित हो अथवा पायस (खीर) का नैवेद्य अर्पित किया जाय। नैवेद्य के अभाव में फलों का अर्पण करना चाहिये तथा फलों के अभाव में जल का ही नैवेद्य अर्पित करना चाहिये।

नैवेद्यभक्षणविचारः

नैवेद्यभक्षणविचारः कालिकापुराणे—

यो यद्देवार्चनरतः स तन्नैवेद्यभक्षकः। केवलं सौरशैवे तु वैष्णवो नैव भक्षयेत्॥
समानं त्वन्यनैवेद्यं भक्षयेदन्यदैवतः॥

शिवनैवेद्ये विशेषः भविष्ये—

शालग्रामोद्भवे लिङ्गे बाणलिङ्गे स्वयम्भुवि। रसलिङ्गे तथार्षे च सुप्रसिद्धप्रतिष्ठिते॥
हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरौप्यादिनिर्मिते। चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥
लिङ्गे स्वयम्भुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते। सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत्॥
यत्र चण्डाधिकारोऽस्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः। चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तितः॥

हेमाद्रौ परिशिष्टे—

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्। शालग्रामशिलासङ्गात्सर्वं याति पवित्रताम्॥

पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्—

सुषुम्नावर्त्मना पुष्पमाघ्रायोद्वासयेत्सुधीः। निर्माल्यं मस्तके धार्यं सर्वाङ्गेष्वनुलेपनम्॥
नैवेद्यं चोपभुञ्जीत दत्त्वा तद्भक्तिशालिने॥ इति।

भक्तिशालिने विष्वक्सेनायेत्यर्थः। तथा च गौतमीये—

गणेशे वक्रतुण्डाय सूर्ये चण्डांशवेऽर्पयेत्। विष्णौ तु विष्वक्सेनाय शिवे चण्डेश्वराय च॥
शक्त्युच्छिष्टे शेषिकायै दद्यादर्चनसिद्धये। अन्यथा नैव सिद्धिः स्यादर्चको नरकं व्रजेत्॥

नैवेद्य-भक्षण विचार—कालिकापुराण में लिखा है—जो जिस देवता की अर्चना (भक्ति) करता हो, वह उसके नैवेद्य-भक्षण करने का अधिकारी है। वैष्णव को सूर्य तथा शिव पर अर्पित किये नैवेद्य को नहीं खाना चाहिये। अन्य देवता का नैवेद्य सभी भक्षण कर सकते हैं।

शिवनैवेद्य में विशेष—भविष्यपुराण में कहा है—शालिग्राम शिला से उत्पन्न शिवलिङ्ग, बाणलिङ्ग (नर्मदा से), स्वयंभूलिङ्ग, रसलिङ्ग (पारदनिर्मित), ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठित, चन्द्रकान्त मणि या स्वर्ण-रजत निर्मित लिङ्ग—इनका नैवेद्य भक्षण करना चान्द्रायण व्रत के समान (पवित्र) जानना चाहिये। स्वयंभूलिङ्ग, बाणलिङ्ग, दानलिङ्ग, रसलिङ्ग—इनमें चण्ड का अधिकार नहीं होता है; किन्तु जहाँ चण्ड का अधिकार हो, वहाँ के शिवनैवेद्य का

भक्षण नहीं करना चाहिये। जहाँ चण्डाधिकार न हो, वहाँ का नैवेद्य भक्तिपूर्वक सेवन करना चाहिये। हेमाद्रि परिशिष्ट में कहा है—शिव का नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल, जल—ये सब अग्राह्य होते हैं; किन्तु शालग्राम शिला के स्पर्श से ये सब पवित्र (ग्राह्य) हो जाते हैं। पुरश्चरणचन्द्रिका में कहा है—बुद्धिमान् को पुष्पनिर्माल्य को सूँघना तथा नेत्रों के पलकों से लगाना चाहिये। जलनिर्माल्य को मस्तक पर धारण करना चाहिये तथा सर्वाङ्ग में लेपन करना चाहिये एवं नैवेद्य का भक्षण भक्तिशाली (विष्वक्सेन) को करना चाहिये। गौतमीय में भी कहा है—श्रीगणेश जी का नैवेद्य वक्रतुण्ड को, सूर्य का नैवेद्य चण्डांशु को तथा विष्णु का नैवेद्य विष्वक्सेन को, शिव का नैवेद्य चण्डेश्वर को, शक्ति का उच्छिष्ट (निर्माल्य) शेषिका को पूजा की सिद्धि के लिये देना चाहिये; अन्यथा सिद्धि नहीं होती है और पूजा करने वाला नरक को जाता है।

देवनिर्माल्यत्यजने दोषनिरूपणम्

देवनिर्माल्यत्यागे दोषः रुद्रयामले—

निवेदितं च यद् द्रव्यं भोक्तव्यं तद्विधानतः। तत्र चेद्भुज्यते मोहाद्भोक्तुमायान्ति देवताः॥

देवनिर्माल्य त्यागने में दोष—रुद्रयामल में लिखा है—जिस द्रव्य का निवेदन किया जाय, उसे विधिपूर्वक सेवन भी करना चाहिये; अन्यथा यदि उसे मोहपूर्वक भक्षण नहीं किया जाता तो उसका देवतागण आकर भक्षण करते हैं।

ताम्बूलादिसमर्पणविचारः

ताम्बूलादिविचारः नारदीयपुराणे—

भोजनानन्तरं देवमद्भिः कर्पूरवासितैः। मह्यमाचमनं मध्ये पानीयं करमार्जनम्॥
फलं ताम्बूलसहितं दक्षिणां कनकान्विताम्। पुष्पाञ्जलिं ततः कुर्याद्भक्त्याऽऽदर्शं प्रदर्शयेत्॥
नीराजनं ततः कार्यं कार्पूरं विभवे सति। समर्प्य मुकुटादीनि भूषणं छत्रचामरे॥
प्रसादसुमुखं ध्यात्वा कुर्याच्चैव प्रदक्षिणाम्। नमस्कारं ततः कुर्यात्साष्टाङ्गं भक्तिपूर्वकम्॥

ताम्बूलादि विचार—नारदीयपुराण में कहा है—भोजन के उपरान्त (नैवेद्योपरान्त) मुझको कर्पूर से सुवासित आचमन तथा करमार्जनार्थ जल देना चाहिये। फिर ताम्बूल (पान)-सहित फल देकर स्वर्णयुक्त दक्षिणा देनी चाहिये। फिर पुष्पाञ्जलि प्रदान कर भक्तिपूर्वक दर्पण दिखाना चाहिये। फिर सामर्थ्य हो तो कर्पूरारार्तिक्य से नीराजन करना चाहिये; अन्यथा सामान्य आरती करनी चाहिये। फिर मुकुट तथा आभूषणों के साथ छत्र तथा चामर समर्पित करना चाहिये। फिर मेरे (देवता के) प्रसन्न मुख का सुखपूर्वक ध्यान करके प्रदक्षिणा करनी चाहिये और अन्त में भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये।

नीराजनविधिः

नीराजनकरणप्रकारः कालोत्तरतन्त्रे—

पञ्चनीराजनं कुर्यात्प्रथमं दीपमालया। द्वितीयं सोदकाब्जेन तृतीयं धौतवाससा॥
चूताश्वत्थादिपत्रैश्च चतुर्थं परिकीर्त्तितम्। पञ्चमं प्रणिपातेन साष्टाङ्गेन यथाविधि॥

हरिभक्तिविलासे—

आदौ चतुष्पादतले च विष्णोर्द्वौ नाभिदेशे मुखमण्डलैकम्।
सर्वेषु चाङ्गेष्वपि सप्तवारानारार्त्तिकं भक्तजनस्तु कुर्यात्॥

नीराजन (आरार्त्तिक्य) करने का प्रकार—कालोत्तर तन्त्र में कहा है—पाँच नीराजन करना चाहिये—१. प्रथम नीराजन दीपमाला से करना चाहिये। २. द्वितीय नीराजन जलसहित कमल अथवा शुक्ति के द्वारा, ३. तृतीय नीराजन धौतवस्त्रों द्वारा, ४. चतुर्थ नीराजन आम्रपल्लव तथा अश्वत्थ के पल्लवों द्वारा एवं ५. पाँचवाँ नीराजन साष्टाङ्ग प्रणाम द्वारा करना चाहिये। हरिभक्तिविलास नामक ग्रन्थ में लिखा है—आदि के चार नीराजन चरणों में, फिर दो नीराजन श्रीविष्णु की नाभि में तथा शेष एक मुख में करने के बाद सात बार नीराजन करना चाहिये।

साष्टाङ्गप्रणामस्वरूपम्

साष्टाङ्गनमस्कारः—

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा। पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते॥

साष्टाङ्ग नमस्कार—१. छाती से, २. शिर से, ३. दृष्टि से, ४. मन से, ६. हाथों से, ७. पैरों से तथा ८. घुटनों से किया गया प्रणाम अष्टाङ्ग कहलाता है।

नवधा भक्तिः

नवधा भक्तिः भागवते—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसाऽर्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। क्रियते भगवत्यद्धा सोऽपि याति परां गतिम्॥

नवधा भक्ति—श्रीमद्भागवत के अनुसार १. श्रवण, २. कीर्तन, ३. स्मरण, ४. पादसेवन, ५. अर्चन, ६. वन्दन, ७. दास्य, ८. सख्यभाव तथा ९. आत्मनिवेदन—ये वैष्णव भक्ति के नौ प्रकार हैं। इसे करने वाला परम गति को प्राप्त होता है।

निर्माल्यग्रहणनियमः

निर्माल्यग्रहणविचारः आह्निकतत्त्वे—

पादोदकं च निर्माल्यं नैवेद्यं च विशेषतः। महाप्रसाद इत्युक्त्वा ग्राह्यं विष्णोः प्रयत्नतः॥

पद्मपुराणे—

ये पिबन्ति नरा नित्यं शालग्रामशिलोदकम्। प्रक्षालयन्त्यसन्दिग्धं ब्रह्महत्यादिपातकम्॥

पुलस्त्यः—

शालग्रामशिलावारि सोमपानं दिनेदिने। पात्रान्तरेण संग्राह्यं न करेण कदाचन॥

शिवलिङ्गे विशेषः निर्णयसिन्धौ—

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नापनोदकम्। त्रिःपिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति॥
लिङ्गस्नपनवार्भिर्यः कुर्यान्मूर्ध्न्यभिषेचनम्। गङ्गास्नानफलं तस्य जायतेऽत्र विपाप्मनः॥
बाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये। न प्रतिष्ठा न संस्कारो न च निर्माल्यकल्पना॥

निर्माल्य ग्रहण विचार—आह्निक तत्त्व में कहा है—पादोदक (चरणामृत), निर्माल्य तथा विशेष रूप से नैवेद्य—ये महाप्रसाद हैं। श्रीविष्णु के इन महाप्रसादों को प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। पद्मपुराण में कहा है—जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्राम शिला का उदक पीते हैं, उनके ब्रह्महत्यादि पाप असन्दिग्ध रूप में क्षीण हो जाते हैं। पुलस्त्य का वचन है—शालग्राम शिला का जल प्रतिदिन पीना सोमपान के सदृश फलदायक होता है। इसे सदैव पात्र में सङ्गृहीत करके ग्रहण करना चाहिये। हाथ में सङ्गृहीत नहीं करना चाहिये।

शिवलिङ्ग में विशेष—निर्णयसिन्धु में कहा है—जो शिवलिङ्ग को विधिपूर्वक स्नान कराकर शिवलिङ्ग का स्नपन जल तीन बार पीता है, उसके पाप शीघ्र नष्ट होते हैं। अथवा जो शिवलिङ्गोदक का सिर पर सिञ्चन करता है, उसे गङ्गास्नान का फल मिलता है और वह पापरहित हो जाता है। बाणलिङ्गों की तीनों लोकों में ख्याति है; उनकी न प्रतिष्ठा होती है, न संस्कार होते हैं; न ही उनमें निर्माल्य की कल्पना होती है अर्थात् उनका नैवेद्यादि पवित्र होता है।

प्रदक्षिणानिरूपणम्

प्रदक्षिणाविचारः लिङ्गार्चनचन्द्रिकायाम्—

एकां चण्ड्यां रवौ सप्त तिस्रो दद्याद्विनायके। चतस्रो विष्णवे दद्याच्छिवे तिस्रः प्रदक्षिणाः॥

प्रदक्षिणा विचार—लिङ्गार्चनचन्द्रिका के अनुसार—चण्डी की एक, सूर्य की सात, गणेशजी की तीन, विष्णु की चार, शिवजी की तीन प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

शिवप्रदक्षिणायां विशेषः शिवरहस्ये—

प्रदक्षिणात्रयं कुर्यात्तथा पञ्चदशाथवा। अष्टौ द्वादश वा कार्या ह्यधिका वापि शक्तितः॥
नैकां प्रदक्षिणां कुर्यात्साम्बस्य परमात्मनः। एकां प्रदक्षिणां कृत्वा शम्भोः पुण्यात्प्रहीयते॥
प्रदक्षिणत्रयान्न्यूनं नैव कार्यं महेश्वरे। पूजां कृत्वा तु यः शम्भोर्न करोति प्रदक्षिणाम्॥
सा पूजा निष्फला तस्य पूजकः स च दाम्भिकः॥
भक्त्या करोति यः सम्यक् केवलं तु प्रदक्षिणाम्। पूजा सर्वा कृता तेन स सम्यक् शिवपूजकः॥

शिवप्रदक्षिणा में विशेष—शिवरहस्य में कहा है—श्री शिवजी की तीन प्रदक्षिणा अथवा पन्द्रह परिक्रमा करनी चाहिये, अथवा बारह या अठारह परिक्रमा भी शक्ति के अनुसार करनी चाहिये। यदि शक्ति हो तो अधिक (१०८) भी की जा सकती है। श्री शिव-पार्वती की कभी भी एक परिक्रमा नहीं करनी चाहिये। जो श्री शिवजी की एक ही प्रदक्षिणा करता है, उसके पुण्य क्षीण हो जाते हैं। अतः महेश्वर शिव की तीन प्रदक्षिणा से कम नहीं करनी चाहिये। जो व्यक्ति श्री शिवजी की पूजा करके प्रदक्षिणा नहीं करता है, उस पूजक की वह पूजा निष्फल होती है; क्योंकि वह पूजक दाम्भिक होता है। जो केवल भक्तिपूर्वक श्रीशम्भु की प्रदक्षिणामात्र करता है, उसको सम्पूर्ण पूजा का फल प्राप्त होता है और वही सम्यक् शिवपूजक माना जाता है।

चण्डसोमसूत्रादिसहितशिवपूजायां प्रदक्षिणाविचारः

एका चण्ड्या रवेः सप्त तिस्रः कार्या विनायके। हरेश्चतस्रः कर्तव्याः शिवस्यार्द्धा प्रदक्षिणा॥
वृषं चण्डं वृषं चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषम्। चण्डं च सोमसूत्रं च पुनश्चण्डं पुनर्वृषम्॥
अपसव्यं यतीनां तु सव्यं तु ब्रह्मचारिणाम्। सव्यापसव्यं गृहिणामेवं शम्भोः प्रदक्षिणा॥
सव्यं व्रजेत्ततोऽसव्यं प्रनालं नैव लङ्घयेत्॥

चण्ड, सोमसूत्रादि सहित शिवपूजा में प्रदक्षिणा का विचार—चण्डी की एक, सूर्य की सात, गणेश की तीन, विष्णु की चार तथा शिव की आधी प्रदक्षिणा कही गई है। प्रथम नन्दी की प्रदक्षिणा करे, फिर चण्ड की प्रदक्षिणा करे, फिर वृष (नन्दी) की प्रदक्षिणा करे, फिर सोमसूत्र की प्रदक्षिणा करे, फिर चण्ड की प्रदक्षिणा कर फिर नन्दी की प्रदक्षिणा करे। संन्यासियों को शिव की प्रदक्षिणा अपसव्य (घड़ी के काँटों की दिशा में) तथा ब्रह्मचारियों को सव्य (घड़ी के काँटों की विपरीत दिशा में) क्रम से प्रदक्षिणा करनी चाहिये। गृहस्थों के लिये श्री

शम्भु की प्रदक्षिणा 'सव्यापसव्य' कही गई है। पहिले सव्य प्रदक्षिणा करनी चाहिये; फिर अपसव्य करनी चाहिये, किन्तु श्रीशिवजी का प्रणाल (जलवाहक नाली) को नहीं लाँघना चाहिये।

आसनाद्युपचारनिवेदनफलम्

आसनाद्युपचारफलं शैवरत्नाकरे—

आवाहनं तु यो दद्यात्स च क्रतुफलं लभेत्। आसनं रुचिरं दत्त्वा शतक्रतुत्वमाप्नुयात्॥
पाद्येन पातकं हन्यादर्घ्येणाप्नोत्यनर्घताम्। ततश्चाचमनं दत्त्वा सुचित्तः सुखितां व्रजेत्॥
स्नानं व्याधिभयं हन्याद्वस्त्रेणायुष्यवर्द्धनम्। उपवीतं तु यो दद्याद्ब्रह्मवेत्तृत्वमेव च॥
भूषणानि च यो दद्यादनापद्यमवाप्नुयात्। गन्धेन लभते काममक्षतै रक्षतं भवेत्॥
नानापुष्पप्रदानेन स्वर्गे राज्यमवाप्नुयात्। धूपो दहति पापानि दीपो मृत्युविनाशनः॥
सर्वमानस्तु नैवेद्यं दत्त्वा तृप्तिरतो भवेत्। मुखवासनदानेन कीर्त्तिमान्भवति ध्रुवम्॥
नीराजनेन शुद्धात्मा दर्पणेन प्रकाशयेत्। फलदः पुत्रवान्मर्त्यस्ताम्बूलात्स्वर्गमाप्नुयात्॥
प्रदक्षिणां तु यः कुर्यात्पापं हन्ति पदेपदे। दण्डप्रणामं यः कुर्याद्देवमुद्दिश्य सन्निधौ॥
वर्षाणि वसते स्वर्गे देहान्ते रेणुसंख्यया॥
स्तोत्रेण दिव्यदेहोऽपि वाग्मी भवति तत्क्षणात्। पुराणपठनेनैव सर्वपापक्षयो भवेत्॥

आसनादि उपचारों का फल—शैवरत्नाकर में कहा है—जो आवाहन देता है, उसे यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है। जो देवता को आसन का उपचार देता है, उसे सौ यज्ञों के बराबर फल मिलता है। पाद्य प्रदान करने से पातक नष्ट होते हैं। अर्घ्य प्रदान करने से उन्नति होती है। आचमन देने से चित्त में प्रसन्नता होती है। देवता को कराया हुआ स्नानोपचार व्याधि के भय को नष्ट करता है। जो उपवीत प्रदान करता है, वह ब्रह्मवेत्ता हो जाता है। जो देवता को आभूषण दान देता है, वह आपत्तिरहित हो जाता है। गन्धोपचार से देवपूजन करने पर मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। अक्षत प्रदान करने से अक्षतप्रदाता की रक्षा होती है। नाना प्रकार के पुष्प प्रदान करने से स्वर्ग का राज्य मिलता है। धूपदान करने से पाप भस्म हो जाते हैं। दीपदान मृत्यु का विनाशक होता है। नैवेद्य प्रदान करने से सर्वत्र सम्मान की प्राप्ति होती है एवं तृप्ति होती है। इलायची आदि देने से कीर्ति प्राप्त होती है। नीराजन देने से आत्मा शुद्ध तथा निर्मल होकर दर्पण की भाँति प्रकाशित होती है अर्थात् पूजक को आत्मसाक्षात्कार होता है। फल देने वाला पुत्रवान होता है। ताम्बूल देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। पदे-पदे प्रदक्षिणा से पाप नष्ट होते हैं। जो देवता को उसके समीप जाकर दण्ड प्रणाम करता है, वह शरीरावसान होने के पश्चात् उतने ही वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है, जितने धूलिकण दण्ड प्रणाम के समय उसके शरीर में चिपक जाते हैं। देवता की स्तुति करने से तत्क्षण वाग्मी तथा दिव्यदेह हो जाता है। देवता के सान्निध्य में पुराण का पाठ करने से सभी पाप क्षीण हो जाते हैं।

पञ्चामृतस्नानफलम्

पञ्चामृतस्नानफलं बृहन्नारदीये—

पयःस्नानं प्रकुर्वन्ति ये नरा मम मूर्द्धनि। शताश्वमेधजं पुण्यं बिन्दुना बिन्दुना स्मृतम्॥
क्षीरस्नानेन सौभाग्यं दध्ना मिष्टान्नभोजनम्। घृतेन स्नापयेद्यो मां नरो मम पुरं व्रजेत्॥
स्नानं शर्करया यस्तु कारयेद्वस्त्रपूतया। स राजा जायते लोके पुनः स्वर्गादिह च्युतः॥
कारयेन्मधुना स्नानं भक्त्या वै मम मूर्द्धनि। गजाश्वरथसङ्कीर्णं स राज्यं लभते भुवि॥
स्नापयेयुर्वेदमन्त्रैर्ये मां पञ्चामृतेन तु। न जातु जननीगर्भे प्रविशन्ति च ते नराः॥

शङ्खे तीर्थोदकं कृत्वा यः स्नापयति मां नरः। धारया बिन्दुना वापि स्वकुलं तारयेद्धि सः॥
स्कान्देऽपि—
अर्घ्यं कृत्वा तु शङ्खेन यः करोति प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥ इति।
एतद्विष्णुपूजायां ज्ञेयम्।

पञ्चामृत स्नान का फल—बृहन्नारदीय के अनुसार—जो लोग मेरे शिर को पञ्चामृत से स्नान कराते हैं, उनको पञ्चामृत की एक-एक बूँद से सौ-सौ अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है। क्षीरस्नान कराने वालों को सौभाग्य की प्राप्ति होती है। जो जन घृतस्नान कराते हैं, वे मेरे पुर में निवास करते हैं। जो वस्त्रपूत शर्करोदक से स्नान कराता है, वह इस लोक में राजा होकर पुनः देहावसानोपरान्त स्वर्ग में जाता है। जो मेरे मूर्द्धा पर मधु से अभिषेक करते हैं, वे अनेक वाहनों से युक्त राज्य प्राप्त करते हैं। जो वेदमन्त्रों के पाठसहित पञ्चामृत से मेरा अभिषेक करते हैं, वे लोग पुनः माता के गर्भ में आकर जन्म नहीं लेते हैं। जो मनुष्य शङ्ख में तीर्थोदक लेकर मुझे अभिषिक्त करते हैं, मुझपर विन्दु-विन्दु कर अभिषेक द्रव्य की धारा प्रवाहित करते हैं, वह अपने कुल को तार देते हैं। स्कन्दपुराण में भी लिखा हुआ है—जो शङ्ख के द्वारा अर्घ्य देकर प्रदक्षिणा करते हैं तो उसके फल से उन्हें सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा का फल मिलता है। यह विष्णुपूजन के लिये समझना चाहिये।

महास्नाने पञ्चामृतप्रमाणकथनम्

महास्नाने पञ्चामृतप्रमाणं हेमाद्रौ शिवधर्मे—
स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गः पञ्चविंशतिः। पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्त्तितम्॥
पञ्चविंशपलं लिङ्गे अभ्यङ्गे कारयेदथ। शिवस्य सर्पिषा स्नानं प्रोक्तं पलशतेन च॥
तावता मधुना चैव दध्ना चैव ततः पुनः। तावतैव च क्षीरेण गन्धेनैव भवेत्ततः॥
भूयः सार्द्धसहस्रेण पलानामैक्षवेण च। रसेन कारयेत्स्नानं भक्त्या चोष्णाम्बुना ततः॥
पुनः शीताम्बुना दत्त्वा वस्त्रपूतेन मन्त्रवित्। स्नापयेद्भक्तितो भूयो गन्धपात्रस्थितेन तु॥
विष्ण्वादौ तु स्कान्दे—
क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम्। घृताद्दशगुणं क्षौद्रं क्षौद्राच्चैक्षवजं तथा॥

महास्नान में पञ्चामृत का प्रमाण—हेमाद्रि में शिवधर्म में कहा गया है—[1]पच्चीस पल पञ्चामृत से अभ्यङ्ग होता है तथा एक सौ पल पञ्चामृत से स्नान सम्पन्न होता है। जिसमें दो सहस्र पल पञ्चामृत या द्रव से स्नान कराया जाता है, उसे महास्नान करते हैं। पच्चीस पल से शिवलिङ्ग का अभ्यङ्ग करना चाहिये। श्री शिवजी को एक सौ पल घृत से स्नान कराना चाहिये। इतने ही प्रमाण में मधु[2] तथा इतने ही प्रमाण में दधि लेना चाहिये और इतना ही (सौ पल) गोदुग्ध ग्रहण करना चाहिये। इसी के साथ पाँच सौ पल इक्षुरस (ईख का रस) लेकर क्रमशः स्नान कराकर फिर भक्तिपूर्वक उष्ण जल से स्नान कराना चाहिये। फिर शीत जल से स्नान कराना चाहिये, यह शीतल जल सुगन्धित होना चाहिये (यह शिवजी के लिये है)। श्रीविष्णु आदि देवताओं के लिये स्कन्दपुराण में पञ्चामृत का प्रमाण इस प्रकार कहा है—गोदुग्ध से दशगुना गोदधि, गोदधि से दशगुना घी, गोघृत से दशगुना मधु एवं मधु से दशगुना इक्षुरस लेना चाहिये।

---

१. एक पल आधुनिक पचास मि.ली. के लगभग होता है।
२. मधु के लिये 'क्षौद्र' शब्द का उपयोग मूल में हुआ है। क्षौद्र का अर्थ मधुमक्खी (छोटी मक्खी) से प्राप्त शहद होता है।

पञ्चगव्यस्नानम्

पञ्चगव्यस्नानं कालिकापुराणे—

कपिलापञ्चगव्येन कुशवारियुतेन च। स्नापयेन्मन्त्रपूतेन ब्राह्मं स्नानं तदुच्यते॥
एकाहमपि यो लिङ्गं ब्राह्मं स्नानं समाचरेत्। विधूय सर्वपापानि रुद्रलोके महीयते॥

पञ्चगव्य स्नान—कालिकापुराण में कहा है कि कपिला गाय के पञ्चगव्य (दूध, दही, घी, मूत्र, गोबर) से कुशोदक के साथ मन्त्रपूत करके जो स्नान होता है, उसे ब्राह्म स्नान कहते हैं। जो एक दिन भी शिवलिङ्ग को ब्राह्मस्नान कराता है, वह सम्पूर्ण पापों को धोकर रुद्रलोक में निवास करता है।

देववस्त्राणि

वस्त्राणि जयसिंहकल्पद्रुमे—

पीतकौशेयवसनं विष्णुप्रीत्यै प्रकीर्तितम्। रक्तं शक्त्यर्कविघ्नानां शिवस्य च सितं प्रियम्॥
मलहीनं तथाऽच्छिद्रं क्षौमं कार्पासमेव वा॥

देवताओं के लिये वस्त्र-परिधान—जयसिंहकल्पद्रुम में लिखा है—पीत वर्ण के कौशेय (रेशमी) वस्त्र श्री विष्णु भगवान् को प्रिय होते हैं, लाल रङ्ग के वस्त्र शक्ति (देवी), अर्क (सूर्य), विघ्न (गणेश) जी को प्रिय होते हैं। शिवजी को श्वेत वस्त्र प्रिय है। ये वस्त्र निर्मल एवं अच्छिद्र होने चाहिये तथा कपास या अलसी के बने होने चाहिये।

देवभेदेन वाद्यभेदः

देवभेदेन निषिद्धवाद्यानि—

शिवागारे झल्लकं च सूर्यागारे तु शङ्खकम्। दुर्गागारे वंशवाद्यं मधुरीं च न वादयेत्॥

तत्रैव—

वादित्राणामभावे तु पूजाकाले च सर्वदा। घण्टाशब्दो नरैः कार्यः सर्ववाद्यमयी यतः॥
स्नाने धूपे तथा दीपे नैवेद्ये भूषणे तथा। घण्टानादं प्रकुर्वीत तथा नीराजनेऽपि च॥

इति श्रीबीकानेरराज्यान्तर्गतश्रीरत्नगढ़नगरनिवासिना गौडवंशोद्भवश्रीवसिष्ठगोत्रश्रीरामकृष्णपौत्रेण श्रीकस्तूरीचन्द्रसूनुना श्रीमहादेवभक्तशुक्लयजुर्वेदीयमाध्यन्दिनवाजसनेयीशाखानुयायिना वैद्यपण्डितश्रीचतुर्थीलालशर्मणा विरचिते अनुष्ठानप्रकाशे महानिबन्धे विचारकाण्डे देवपूजाविचारप्रकरणं प्रथमं समाप्तम्।

देवभेद से निषिद्ध वाद्य—शिवागार अर्थात् शिवमन्दिर में [1]झल्लक नहीं बजाना चाहिये। सूर्यमन्दिर में शङ्ख नहीं बजाना चाहिये। दुर्गा के मन्दिर में बाँसुरी नहीं बजानी चाहिये और न ही वीणा बजानी चाहिये। वहीं पर कहा गया है—वाद्यों (बाजों) के अभाव में पूजाकाल में सर्वदा लोगों को घण्टा बजाना चाहिये; क्योंकि घण्टा सर्ववाद्यमय होता है। स्नान के समय, धूपदान, दीपदान, नैवेद्यार्पण तथा भूषण-अर्पण के समय घण्टावादन करना चाहिये। आरती के समय भी घण्टा बजाना चाहिये।

इस प्रकार पं० चतुर्थीलाल-विरचित अनुष्ठानप्रकाश-महानिबन्ध के प्रथम काण्ड विचारकाण्ड के प्रथम प्रकरण देवपूजा-विचार प्रकरण की महर्षि अभय कात्यायन-विरचित हिन्दी टीका पूर्ण हुई॥ १॥

---

१. झल्लक का अर्थ मंजीरा या झांझ होता है।